

## **Chapter सत्रह**

### **गंगा-अवतरण**

इस अध्याय में गंगा नदी के उद्गम तथा उसके इलावृत-वर्ष में और इसके चारों ओर बहने का वर्णन किया गया है। इसमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चतुर्भुज रूप के अंश संकर्षण के प्रति की गई शिव की वन्दना भी है। एक बार भगवान् विष्णु बलि महाराज के पास पहुँचे तो वे यज्ञ में तल्लीन थे।

भगवान् उनके समक्ष त्रिविक्रम अथवा वामन के रूप में प्रकट हुए और उनसे दानरूप में तीन पग भूमि की याचना की। भगवान् वामन ने दो ही पगों में तीनों लोकों को मापकर अपने बाएँ पैर के अँगूठे से ब्रह्माण्ड के आवरण को भेद डाला। इस छिद्र के कारण-समुद्र से जल की कुछ बूँदे बाहर निकल कर भगवान् शंकर के सिर पर पड़ीं जहाँ पर वे एक हजार युगों तक पड़ी रहीं। ये ही बूँदे पवित्र गंगा नदी हैं। यह पहले स्वर्ग लोक में बहती है जो भगवान् विष्णु के चरण तल में स्थित है। गंगा नदी भागीरथी तथा जाह्नवी आदि कई नामों से भी विख्यात है। यह ध्रुव लोक तथा सप्तर्षि लोकों को पवित्र करने वाली है, क्योंकि ध्रुव तथा सप्तर्षियों की एकमात्र अभिलाषा भगवान् के चरणकमलों की सेवा करना है।

भगवान् विष्णु के चरणकमल से निर्गत गंगा नदी स्वर्ग लोकों को, विशेष रूप से चन्द्रमा को, आप्लावित करती हुई मेरु पर्वत के ऊपर बसी ब्रह्मपुरी से होकर आगे बहती है। यहाँ पर यह चार धाराओं (सीता, अलकनन्दा, चक्षु तथा भद्रा) में विभाजित होकर लवण सागर की ओर बहती है। इनमें से सीता-नामक धारा शेखर पर्वत तथा गन्धमादन पर्वत से होकर बहती है और फिर भद्राश्व-वर्ष तक प्रवाहित होकर पश्चिम में लवण सागर से मिल जाती है। चक्षु धारा माल्यवान्-गिरि से होकर प्रवाहित होते हुए केतुमाल-वर्ष में पहुँचकर पश्चिम में लवण सागर में मिल जाती है। भद्रा कुरुदेश पहुँचने के पूर्व मेरु, कुमुद, नील, श्वेत तथा शृंगवान पर्वतों को पार करती है और तब उत्तर दिशा में लवण सागर में मिल जाती है। अलकनन्दा ब्रह्मालय से बहती हुई अनेक पर्वतों को, जिनमें हेमकूट तथा हिमकूट भी सम्मिलित हैं लाँघ करके भारतवर्ष में पहुँचती है जहाँ यह लवण सागर के दक्षिण की ओर बहती है। अनेक नदियाँ तथा उनकी शाखाएँ नौ वर्षों में से होकर बहती हैं।

भारतवर्ष नामक भूभाग कर्म क्षेत्र है तथा अन्य आठ वर्ष उन पुरुषों के निमित्त हैं, जो स्वर्गिक आनन्द उठाना चाहते हैं। इन आठों सुन्दर वर्षों में स्वर्गिक प्राणी विभिन्न स्तरों के भौतिक सुख और आनन्द का अनुभव करते हैं। श्रीभगवान् भिन्न अवतार लेकर जम्बूद्वीप के इन नौ वर्षों में अपनी दया का वितरण करते हैं।

इलावृत वर्ष में भगवान् शंकर ही एकमात्र पुरुष हैं। यहाँ वे अपनी पत्नी भवानी के साथ वास करते हैं और अनेक अनुचरियाँ भवानी देवी की सेवा करती हैं। यदि कोई अन्य पुरुष इस प्रदेश में

प्रवेश करता है, तो भवानी के श्राप से वह स्त्री बन जाता है। भगवान् शंकर संकर्षण भगवान् की पूजा अनेक प्रकार की प्रार्थनाओं द्वारा करते हैं। उन प्रार्थनाओं में से एक इस प्रकार है—“हे भगवन्! अपने समस्त भक्तों को इस भौतिक जीवन से उबारें और जो भक्त नहीं हैं उन्हें भौतिक जगत से बाँध कर रखें। आपकी कृपा के बिना कोई भी प्राणी भौतिक जगत के बन्धन से छुटकारा नहीं पा सकता।”

श्रीशुक उवाच

तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाद्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तःप्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताखिलजगदधमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानातिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; तत्र—उस काल; भगवतः—श्रीभगवान् के अवतार का; साक्षात्—प्रत्यक्ष; यज्ञ-लिङ्गस्य—समस्त यज्ञों के फल का भोक्ता; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; विक्रमतः—दूसरा पग भरते हुए; वाम-पाद—बाएँ पैर के; अङ्गुष्ठ—अँगूठे के; नख—नाखून द्वारा; निर्भिन्न—भेद कर; ऊर्ध्व—ऊपरी; अण्ड-कटाह—ब्रह्माण्ड का ऊपरी आवरण ( इसमें पृथ्वी, जल, अग्नि इत्यादि सात आवरण हैं ) ); विवरेण—छिद्र से होकर; अन्तः-प्रविष्टा—ब्रह्माण्ड को भेद कर; या—जो; बाह्य-जल-धारा—ब्रह्माण्ड से बाहर कारण-समुद्र जल की धारा; तत्—उसका; चरण-पङ्कज—चरणकमल का; अवनेजन—धोकर; अरुण-किञ्जल्क—लाल चूर्ण के द्वारा; उपरञ्जिता—रंजित होकर; अखिल-जगत्—सम्पूर्ण संसार के; अध-मल—पापकर्म; अपहा—विनष्ट करती है; उपस्पर्शन—जिसके स्पर्श से; अमला—नितान्त शुद्ध; साक्षात्—प्रत्यक्षतः; भगवत्-पदी—श्रीभगवान् के चरणकमल से निकलने वाली; इति—इस प्रकार; अनुपलक्षित—वर्णित; वचः—नाम से; अभिधीयमाना—पुकारी जाकर; अति-महता कालेन—दीर्घकाल के पश्चात्; युग-सहस्र-उपलक्षणेन—एक हजार युग; दिवः—आकाश के; मूर्धनि—शीश पर ( ध्रुव लोक ); अवततार—नीचे उतरी; यत्—जो; तत्—वह; विष्णु-पदम्—भगवान् विष्णु के चरणकमल; आहुः—पुकारते हैं।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—हे राजन्, सभी यज्ञों के भोक्ता भगवान् विष्णु महाराज बलि की यज्ञशाला में वामनदेव का रूप धारण करके प्रकट हुए। तब उन्होंने अपने वाम पाद को ब्रह्माण्ड के छोर तक फैला दिया और अपने पैर के अँगूठे से उसके आवरण में एक छिद्र बना दिया। इस छिद्र से निकले कारण-समुद्र के विशुद्ध जल ने गंगा नदी के रूप में इस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया। विष्णु के चरणकमलों को, जो केशर से लेपित थे, धोने से गंगा का जल अत्यन्त मनोहर गुलाबी रंग का हो गया। गंगा के दिव्य जल के स्पर्श से क्षण भर में प्राणियों के मन के भौतिक विकार शुद्ध हो जाते हैं, किन्तु इसका जल सदैव शुद्ध रहता है। चूँकि इस ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट होने के पूर्व गंगा प्रत्यक्ष रूप से विष्णुजी के चरणकमलों का स्पर्श करती है, इसलिए वह विष्णुपदी कहलाती है। बाद में उसके अन्य नाम पड़े यथा जाह्नवी तथा भागीरथी। एक हजार युगों के बाद गंगा का जल ध्रुवलोक में उतरा जो इस ब्रह्माण्ड का सर्वोपरि लोक है। इसीलिए

सभी सन्त तथा विद्वान् ध्रुवलोक को विष्णुपद ( अर्थात् भगवान् विष्णु चरणकमलों में स्थित ) कहते हैं।

**तात्पर्य :** इस श्लोक में शुकदेव गोस्वामी ने गंगा नदी की महिमा का वर्णन किया है। गंगा जल पतित-पावन कहलाता है, क्योंकि यह सभी पापियों का उद्धार करने वाला होता है। यह सर्वविदित है कि गंगा में नित्यप्रति स्नान करने से बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि होती है। बाह्यतः शरीर सभी प्रकार के रोगों का प्रतिरोध कर सकता है और आन्तरिक रूप से मनुष्य में क्रमशः श्रीभगवान् के प्रति भक्तिभाव उत्पन्न होता है। भारतभर के हजारों लोग, जो गंगा के तट पर वास करने वाले हैं, नियमित रूप से गंगाजल में स्नान करते हैं और निश्चित रूप से मन तथा तन से पवित्र होते रहते हैं। अनेक ऋषियों ने, जिनमें शंकराचार्य भी हैं, गंगा की प्रशंसा में स्तुतियाँ लिखी हैं और भारतवर्ष स्वयं भी गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा, नर्मदा जैसी नदियों के कारण धन्य हो गया है। स्वाभाविक है कि इन नदियों के तटवर्ती भूभाग का वासी आध्यात्मिक भावना में अग्रणी हो। श्रील माध्वाचार्य का कथन है—

वाराहे वामपादं तु तदन्येषु तु दक्षिणम् ।

पादं कल्पेषु भगवानुज्जहार त्रिविक्रमः ॥

अपने दक्षिण पाद पर खड़े होकर तथा वामपाद को ब्रह्माण्ड के ऊपर रखकर भगवान् वामन त्रिविक्रम अर्थात् वह अवतार कहलाए जिन्होंने तीन वीरतापूर्ण कार्य किए।

यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति  
यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानान्तर्हृदय  
औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽ  
धुनापि परमादरेण शिरसा बिभर्ति. ॥ २ ॥

शब्दार्थ

यत्र ह वाव—ध्रुवलोक में; वीर-व्रतः—दृढ़प्रतिज्ञ; औत्तानपादिः—महाराज उत्तानपाद का विख्यात पुत्र; परम-भागवतः—परम भक्त; अस्मत्—हमारा; कुल-देवता—पारिवारिक देवता का; चरण-अरविन्द—चरणकमल; उदकम्—जल में; इति—इस प्रकार; याम्—जो; अनुसवनम्—सतत; उत्कृष्यमाण—वर्धमान; भगवत्-भक्ति-योगेन—भगवान् के प्रति भक्ति के द्वारा; दृढम्—अत्यन्त; क्लिद्यमान-अन्तः-हृदयः—अपने हृदय के अन्तः में मृदु होकर; औत्कण्ठ्य—अत्यन्त उत्कंठा ( चिन्ता ) से; विवश—तत्क्षण; अमीलित—कुछ कुछ खुले; लोचन—नेत्रों का; युगल—जोड़ा; कुड्मल—कली से; विगलित—विकीर्ण होकर; अमल—मलरहित; बाष्प-कलया—अश्रु-पूर्ण; अभिव्यज्यमान—प्रकट रूप में; रोम-पुलक-कुलकः—शरीर में प्रसन्नता के द्योतक लक्षण; अधुना अपि—आज भी; परम-आदरेण—अत्यन्त आदरपूर्वक; शिरसा—शिर पर; बिभर्ति—धारण करता है।

महाराज उत्तानपाद के ख्याति प्राप्त पुत्र ध्रुव महाराज परम-ईश्वर के सर्वश्रेष्ठ भक्त कहलाते हैं,

क्योंकि उनकी भक्ति-निष्ठा दृढ़ थी। यह जानते हुए कि गंगाजल भगवान् विष्णु के चरणकमल को पखारता है, वे उस जल को अपने लोक में ही रहते हुए आज तक अपने शिर पर भक्तिपूर्वक धारण करते हैं। चूँकि वे अपने अन्तस्थल ( हृदय ) में श्रीकृष्ण का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं, फलतः वे अत्यन्त उत्कंठित रहते हैं, उनके अर्ध-निमीलित नेत्रों से अश्रु की धारा बहती है और उनका शरीर पुलकायमान रहता है।

तात्पर्य : जब कोई व्यक्ति श्रीभगवान् की भक्ति में स्थिर हो जाता है, तो उसे वीरव्रत अर्थात् दृढ़प्रतिज्ञ कहते हैं। ऐसा भक्त अपनी उत्कंठा को अधिकाधिक बढ़ाता रहता है। अतः जब वह भगवान् विष्णु का स्मरण करता है, तो उसके नेत्र अश्रु-पूरित हो उठते हैं। यह महाभागवत का लक्षण है। ध्रुव महाराज ऐसी ही भक्तिपूर्ण उत्कंठा में मग्न रहते थे और जगन्नाथ पुरी में रहते हुए चैतन्य महाप्रभु ने भी दिव्य उत्कंठा का व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत किया। चैतन्यचरितामृत में उनकी जीवनचर्या का सम्यक् वर्णन मिलता है।

ततः सप्त ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्धहन्ति. ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; सप्त ऋषयः—( मरीचि से लेकर ); तत् प्रभाव-अभिज्ञाः—जो गंगा के प्रभाव से भलीभाँति परिचित थे; याम्—यह गंगा जल; ननु—निश्चय ही; तपसः—हमारे तपों का; आत्यन्तिकी—परम; सिद्धिः—सिद्धि; एतावती—इतनी; भगवति—श्रीभगवान्; सर्व-आत्मनि—सर्वव्यापी; वासुदेवे—श्रीकृष्ण में; अनुपरत—अविरत; भक्ति-योग—भक्ति योग का; लाभेन—इस पद को प्राप्त करके; एव—निश्चय ही; उपेक्षित—तिरस्कृत; अन्य—दूसरा; अर्थ-आत्म-गतयः—सिद्धि के अन्य सभी साधन ( यथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ); मुक्तिम्—सांसारिक बन्धनों से छुटकारा; इव—सदृश; आगताम्—प्राप्त किया; मुमुक्षवः—मुक्ति की इच्छा करने वाला व्यक्ति; इव—सदृश; स-बहु-मानम्—अत्यन्त मानपूर्वक; अद्य अपि—आज भी; जटा-जूटैः—जूड़े के रूप में बँधी जटाओं से युक्त; उद्धहन्ति—धारण करते हैं।

ध्रुवलोक के नीचे वाले लोकों में सप्तर्षियों ( मरीचि, वसिष्ठ, अत्रि इत्यादि ) का वास है। गंगा जल के प्रभाव से परिचित होने के कारण वे आज भी अपने शिर की जटाओं पर उसे धारण करते हैं। अन्ततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यही परम धन, समस्त तपस्याओं की सिद्धि तथा दिव्य जीवन बिताने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की सतत भक्ति प्राप्त होने के कारण उन्होंने धर्म, अर्थ, काम, तथा परब्रह्म से तदाकार होने ( अर्थात् ) मोक्ष जैसे समस्त साधनों का परित्याग कर दिया है। जिस प्रकार ज्ञानीजन यह सोचते हैं कि भगवान् में

तदाकार होना ही परम सत्य है उसी प्रकार सप्तर्षि भी भक्ति को जीवन की परम सिद्धि मानते हैं।

**तात्पर्य :** अध्यात्मवादियों की दो प्राथमिक कोटियाँ हैं—निर्विशेषवादी तथा भक्त। निर्विशेषवादी जीवन के आध्यात्मिक रूपों को स्वीकार नहीं करते। वे श्रीभगवान् के ब्रह्मरूप (ब्रह्मज्योति) में तदाकार होना चाहते हैं। किन्तु भक्तजन श्रीभगवान् दिव्य कार्य-कलापों में सम्मिलित होने के लिए इच्छुक रहते हैं। ऊर्ध्वलोकों में सबसे ऊपर ध्रुवलोक है और इसके नीचे महर्षियों अर्थात् पहले मरीचि, वसिष्ठ और अत्रि द्वारा अधिवसित सात ग्रह हैं। ये सभी ऋषि भक्ति को जीवन की चरम सिद्धि मानने वाले हैं। फलतः ये पवित्र गंगाजल को अपने अपने शिर पर धारण करते हैं। इस श्लोक से यह सिद्ध होता है कि जिसने विशुद्ध भक्ति के पद को प्राप्त कर लिया है उसके लिए सभी कुछ, यहाँ तक कि तथाकथित मुक्ति (कैवल्य) भी, तुच्छ है। श्रील श्रीधर स्वामी का कहना है कि भगवान् की विशुद्ध भक्ति प्राप्त कर लेने पर अन्य समस्त कार्यों को तुच्छ समझकर छोड़ा जा सकता है। प्रबोधानन्द स्वामी इस कथन की पुष्टि इस प्रकार करते हैं—

*कैवल्यं नरकायते त्रिदशपुर आकाशपुष्पायते*

*दुर्दान्तेन्द्रियकालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते ।*

*विश्वं पूर्णसुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते*

*यत् कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरम् एव स्तुमः ॥*

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्तियोग की क्रिया का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है। फलतः जो चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल की शरण में जाता है, उसके लिए मायावादियों की परम सिद्धि (कैवल्य) नारकीय लगती है और कर्मियों की महत्त्वाकांक्षाओं का क्या कहना जो स्वर्गलोक पहुँचना चाहते हैं। भक्तगण ऐसे लक्ष्य को मायाजाल ही मानते हैं। योगी भी अपनी इन्द्रियों को वश में करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु भक्ति की अवस्था को प्राप्त हुए बिना उन्हें भी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। इन्द्रियों की तुलना विषधर सर्पों से की गई है, किन्तु श्रीभगवान् की सेवा में संलग्न भक्तों की इन्द्रियाँ विषदंत विहीन सर्पों की तरह हैं। योगी अपनी इन्द्रियों का दमन करने का भरसक प्रयत्न करता है, किन्तु विश्वामित्र जैसे महान् योगी भी अपने प्रयास में असफल रहते हैं। अपनी तपस्या के समय विश्वामित्र अपनी इन्द्रियों द्वारा पराजित हो गए जब वे अपनी साधना में लीन रहते हुए मेनका द्वारा वशीभूत हो

गये। बाद में उससे शकुन्तला का जन्म हुआ। अतः इस संसार में भक्तियोगी सबसे बुद्धिमान है, जैसाकि भगवद्गीता (६.४७) में श्रीकृष्ण इसकी पुष्टि करते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।

श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

“सब योगियों में जो भी योगी श्रद्धाभाव से मेरे परायण होकर प्रेममय भक्ति योग के द्वारा मेरी सेवा करता है, वह मुझसे परम अन्तरंग रूप में जुड़ा है और सर्व श्रेष्ठ है।”

ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसङ्कुलदेवयानेनावतरन्तीन्दुमण्डलमावार्यं ब्रह्मसदने निपतति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ततः—सप्तर्षियों के सात लोकों को पवित्र करने पश्चात्; अनेक—कई; सहस्र—हजार; कोटि—करोड़ों; विमान—अनीक—विमान सेना सहित; सङ्कुल—समूहित; देव—यानेन—देवताओं के अन्तरिक्ष से होकर; अवतरन्ती—उतरते हुए; इन्दु-मण्डलम्—चन्द्र लोक को; आवार्यं—आप्लावित करके; ब्रह्म-सदने—सुमेरु पर्वत के ऊपर ब्रह्मा के आवास तक; निपतति—गिरता है।

ध्रुवलोक के पड़ोसी सात लोकों को पावन करने के पश्चात् गंगा का जल करोड़ों देवताओं के विमानों द्वारा अन्तरिक्ष को ले जाया जाता है। तब यह चन्द्रलोक को आप्लावित करता हुआ अन्ततः मेरु पर्वत पर स्थित ब्रह्मा के आवास तक पहुँच जाता है।

तात्पर्य : हमें स्मरण रखना होगा कि गंगा नदी ब्रह्माण्ड के बाह्यावरण से भी परे कारण-समुद्र से निकली है। भगवान् वामन द्वारा बनाये गये छिद्र से निकलता हुआ कारण-समुद्र का जल स्रावित होकर पहले ध्रुवलोक में पहुँचता है और फिर उसके नीचे के सातों लोकों में पहुँचता है। फिर इसे असंख्य स्वर्गिक विमानों के द्वारा चन्द्रमा तक पहुँचाया जाता है और तब यह मेरु पर्वत की चोटी पर गिरता है। जिसे सुमेरु पर्वत कहते हैं। इस प्रकार गंगा का जल अन्त में अधोलोकों तथा हिमालयशृंगों में पहुँचता है जहाँ से बहकर यह हरद्वार पहुँचता है और फिर भारत के समूचे मैदानी भाग को पवित्र बनाता है। इस श्लोक में यह बताया गया है कि गंगा का जल ब्रह्माण्ड के ऊपर से विभिन्न लोकों तक किस प्रकार पहुँचता है। यही जल नैसर्गिक विमानों द्वारा ऋषि-लोकों से अन्य लोकों तक पहुँचता है। आज के तथाकथित समुन्नत विज्ञानी उच्चतर लोकों में पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु इसके साथ साथ उन्हें इसका अनुभव हो रहा है कि पृथ्वी पर ऊर्जा का अभाव हो रहा है। यदि वे सचमुच समर्थ विज्ञानी होते तो वे स्वयं विमानों के द्वारा अन्य लोकों की यात्रा करते, किन्तु ऐसा कर पाने में वे असमर्थ हैं।

उन्होंने अब चन्द्रमा की यात्राएँ बन्द कर दी हैं और अब वे अन्य ग्रहों में जाने का प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल पा रही।

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशामभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीतालकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ ( मेरु पर्वत पर ); चतुर्धा—चार धाराओं में; भिद्यमाना—विभाजित होकर; चतुर्भिः—चार; नामभिः—नामों से; चतुः-दिशम्—चारों दिशाओं में ( पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण ); अभिस्पन्दन्ती—वेग से प्रवाहित होकर; नद-नदी-पतिम्—समस्त बृहद् नदियों का आगार ( सागर ); एव—निश्चय ही; अभिनिविशति—प्रविष्ट करती है; सीता-अलकनन्दा—सीता तथा अलकनन्दा; चक्षुः—चक्षु; भद्रा—भद्रा; इति—इन नामों से विख्यात।

मेरु पर्वत की चोटी पर गंगा नदी चार धाराओं में विभक्त हो जाती है और प्रत्येक धारा अलग-अलग दिशाओं की ओर ( पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण ) वेग से प्रवाहित होती है। ये धाराएँ सीता, अलकनन्दा, चक्षु तथा भद्रा नाम से विख्यात हैं और ये सब सागर की ओर बहती हैं।

सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वान्तरेण भद्राश्ववर्ष प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सीता—सीता नामक धारा; तु—निश्चय ही; ब्रह्म-सदनात्—ब्रह्मपुरी से; केसराचल-आदि—केसराचल तथा अन्य महान् पर्वतों के; गिरि—पर्वतों की; शिखरेभ्यः—चोटियों से; अधः अधः—नीचे की ओर; प्रस्रवन्ती—प्रवाहित; गन्धमादन—गंध-मादन पर्वत की; मूर्धसु—चोटी पर; पतित्वा—गिर कर; अन्तरेण—के अन्तर्गत; भद्राश्व-वर्षम्—भद्राश्व प्रदेश; प्राच्याम्—पूर्व; दिशि—दिशा में; क्षार-समुद्रम्—लवण सागर में; अभिप्रविशति—प्रवेश करती है।

गंगा नदी की सीता नामक धारा मेरु पर्वत की चोटी पर स्थित ब्रह्मपुरी से होकर बहती हुई पार्श्ववर्ती केसराचल पर्वतों के शृंगों पर पहुँचती है। जो मेरु पर्वत जितने ही ऊँचे हैं। ये पर्वत मेरु पर्वत के चारों ओर तन्तुगुच्छ जैसे हैं। केसराचल पर्वतों से चलकर गंगा नदी गंधमादन पर्वत की चोटी पर गिरती है और वहाँ से भद्राश्व-वर्ष की भूमि में बहती है। अन्त में यह पश्चिम में लवण सागर में पहुँच जाती है।

एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥ ७ ॥

शब्दार्थ



एवम्—इस प्रकार; माल्यवत्-शिखरात्—माल्यवान् पर्वत की चोटी से; निष्पतन्ती—नीचे गिरकर; ततः—तत्पश्चात्; अनुपरत-वेगा—अप्रतिहत वेग से; केतुमालम् अभि—केतुमाल वर्ष में; चक्षुः—चक्षु नामक धारा; प्रतीच्याम्—पश्चिम; दिशि—दिशा में; सरित्-पतिम्—सागर में; प्रविशति—प्रवेश करती है।

गंगा नदी की चक्षु नामक धारा माल्यवान् पर्वत की चोटी पर गिरती है और वहाँ से प्रपात के रूप में गिरकर केतुमाल वर्ष में प्रवेश करती है। अविच्छिन्न रूप से केतुमाल वर्ष से बहकर गंगा नदी पश्चिम की ओर लवण सागर तक पहुँच जाती है।

भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखरादिगिरिशिखरमतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरुनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति. ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

भद्रा—भद्रा नामक धारा; च—भी; उत्तरतः—उत्तर दिशा को; मेरु-शिरसः—मेरु पर्वत की चोटी से; निपतिता—गिर कर; गिरि-शिखरात्—कुमुद पर्वत की चोटी से; गिरि-शिखरम्—नील पर्वत की चोटी तक; अतिहाय—बिना स्पर्श किये पार करके; शृङ्गवतः—शृंगवान् पर्वत की; शृङ्गात्—चोटी से; अवस्यन्दमाना—प्रवाहित होकर; उत्तरान्—उत्तरी; तु—किन्तु; कुरुन्—कुरु प्रदेश की; अभितः—चारों दिशाओं में; उदीच्याम्—उत्तरी; दिशि—दिशा में; जलधिम—लवण सागर में; अभिप्रविशति—प्रवेश करती है।

गंगा की भद्रा नामक धारा मेरु पर्वत की उत्तरी दिशा से होकर बहती है। इसका जल क्रमशः कुमुद, नील, श्वेत तथा शृंगवान् पर्वतों की चोटियों पर गिरता है। फिर वह कुरु प्रदेश में से बहती हुई उत्तर में लवण सागर से मिल जाती है।

तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्द्वैमकूटान्यतिरभसतरंरहसा लुठयन्ती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति. ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

तथा एव—इसी प्रकार; अलकनन्दा—अलकनन्दा नामक धारा; दक्षिणेन—दक्षिण दिशा से; ब्रह्म-सदनात्—ब्रह्मपुरी से; बहूनि—बहुत सी; गिरि-कूटानि—पर्वत चोटियों को; अतिक्रम्य—पार करके; हेमकूटात्—हेमकूट पर्वत से; हेमकूटानि—तथा हिमकूट; अति-रभसतर—अधिक भयावनी; रहसा—अधिक वेग से; लुठयन्ती—अपहरण करती हुई; भारतम् अभिवर्षम्—भारतवर्ष के चारों ओर; दक्षिणस्याम्—दक्षिण; दिशि—दिशा में; जलधिम—लवण सागर में; अभिप्रविशति—प्रवेश करती है; यस्याम्—जिसमें; स्नान-अर्थम्—स्नान हेतु; च—और; आगच्छतः—आये हुए; पुंसः—पुरुष; पदे पदे—प्रत्येक पग पर; अश्वमेध-राजसूय-आदीनाम्—अश्वमेध तथा राजसूय जैसे महान् यज्ञों का; फलम्—फल; न—नहीं; दुर्लभम्—प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है; इति—ऐसा।

इसी प्रकार अलकनन्दा ब्रह्मपुरी की दक्षिण दिशा से होकर बहती है। विभिन्न प्रदेशों में पर्वतों की चोटियों को पार करती हुई यह अत्यन्त वेग से हेमकूट तथा हिमकूट पर्वतों की चोटियों पर गिरती है। इन पर्वतों की चोटियों को आप्लावित करती हुई गंगा भारतवर्ष नामक भूभाग में गिरती है और उसे अपने जल से आपूरित करती चलती है। तत्पश्चात् यह दक्षिण दिशा

में लवण सागर में मिल जाती है। जो व्यक्ति इस नदी में स्नान करने आते हैं, वे भाग्यशाली हैं। उन्हें पग-पग पर राजसूय तथा अश्वमेध जैसे महान् यज्ञों के करने का फल प्राप्त करना दुष्कर नहीं है।

**तात्पर्य :** अब भी जहाँ बंगाल की खाड़ी के लवण जल में गंगा नदी मिलती है, वह स्थान गंगा सागर कहलाता है। जनवरी-फरवरी मास में मकर-संक्रान्ति के अवसर पर आज भी यहाँ हजारों लोग मुक्ति प्राप्त करने की अभिलाषा से स्नान करने आते हैं और वास्तव में उनको मुक्ति प्राप्त होती है, जिसकी पुष्टि यहाँ की गई है। जो लोग किसी भी समय गंगा स्नान करते हैं उन्हें अश्वमेध तथा राजसूय जैसे महान् यज्ञों का फल प्राप्त होना कठिन नहीं होता है। आज भी भारत के अधिकांश लोग गंगा में स्नान करने के इच्छुक हैं और ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ वे स्नान कर सकते हैं। प्रयाग (इलाहाबाद) में प्रतिवर्ष जनवरी मास में गंगा तथा यमुना नदी के संगम पर स्नान करने के लिए लाखों लोग एकत्र होते हैं। इसके बाद वे बंगाल की खाड़ी तथा गंगा के संगम में स्नान करते हैं। भारत के लोगों के लिए यह विशेष सुविधा है कि वे अनेक तीर्थस्थानों पर गंगास्नान कर सकते हैं।

अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो मेर्वादिगिरिदुहितरः शतशः. ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्य अनेक; च—भी; नदा:—नदियाँ; नद्यः—छोटी नदियाँ; च—तथा; वर्षे वर्षे—प्रत्येक प्रदेश में; सन्ति—हैं; बहुशः—अनेक प्रकार की; मेरु-आदि-गिरि-दुहितरः—मेरु आदि पर्वतों की पुत्रियाँ; शतशः—सैकड़ों।

मेरु पर्वत की चोटी से अन्य अनेक छोटी तथा बड़ी नदियाँ निकलती हैं। ये नदियाँ पर्वत की पुत्रियों के तुल्य हैं और वे सैकड़ों धाराओं में विभिन्न भूप्रदेशों में बहती हैं।

तत्रापि भारतमेव वर्ष कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति. ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तत्र अपि—इन सबों में से; भारतम्—भारतवर्ष नाम से विख्यात; एव—निश्चय ही; वर्षम्—भूखण्ड, प्रान्त; कर्म-क्षेत्रम्—कर्मक्षेत्र; अन्यानि—अन्य सभी; अष्ट वर्षाणि—आठ वर्ष (भूखण्ड); स्वर्गिणाम्—पवित्र कर्मों के फलस्वरूप स्वर्गलोक को प्राप्त जीवात्माओं के; पुण्य—पवित्र कर्मों के फल; शेष—बचे हुए; उपभोग-स्थानानि—भौतिक सुख के स्थान; भौमानि स्वर्ग-पदानि—पृथ्वी पर स्वर्गिक स्थानों के रूप में; व्यपदिशन्ति—कहलाते हैं।

नवों वर्षों में से भारतवर्ष नामक भूभाग कर्मक्षेत्र माना जाता है। विद्वान तथा सन्तजनों का कथन है कि अन्य आठ वर्ष अत्यन्त पुण्यात्माओं के निमित्त हैं। वे स्वर्गलोक से लौटकर इन

आठ भूप्रदेशों में अपने शेष पुण्यकर्मों का फल भोगते हैं।

तात्पर्य : स्वर्ग के भोगस्थानों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है अपार्थिव स्वर्गलोक, भौम स्वर्गलोक, बिल स्वर्गलोक, जो निम्नतर भागों में पाये जाते हैं। इन तीनों श्रेणियों में से भौम स्वर्गलोक भारतवर्ष के अतिरिक्त आठ वर्षों के रूप में हैं। भगवद्गीता (९.२१) में श्रीकृष्ण कहते हैं—*क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति*—“पुण्यों के क्षय होने पर स्वर्ग में वास करने वाले व्यक्ति इस पृथ्वी पर लौट आते हैं।” इस प्रकार वे पहले स्वर्गलोक पहुँचते हैं और पुनः च्युत होकर पृथ्वी लोक पर आते हैं। यह क्रिया ब्रह्माण्ड-भ्रमण अर्थात् ब्रह्माण्ड भर में ऊपर-नीचे भ्रमण करना कहलाती है। जो बुद्धिमान हैं, वे ऊपर और नीचे के इस आवागमन में नहीं पड़ते। वे भगवान् की सेवा करते हुए अन्त में ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर दिव्य लोक में प्रवेश करते हैं। फिर वे वैकुण्ठ लोक या इससे भी ऊपर स्थित कृष्णलोक (गोलोक वृन्दावन) में अवस्थित हो जाते हैं। भक्त कभी भी स्वर्गलोक तक उठने और फिर वहाँ से नीचे गिरने के बन्धन में नहीं पड़ते। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं—

*एइ रूपे ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।*

*गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलताबीज ॥*

ब्रह्माण्ड भर में चक्कर लगाने वाले समस्त जीवात्माओं में जो सर्वाधिक भाग्यवान् है, वही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रतिनिधि के सम्पर्क में आता है और सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त करता है। जो निष्ठा से श्रीकृष्ण की कृपा के लिए लालायित रहते हैं उन्हें ऐसा गुरु प्राप्त होता है जो श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है। मनोकल्पना करने वाले मायावादी तथा कर्मों के फल की इच्छा रखने वाले कर्मी गुरु नहीं बन सकते। गुरु को श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होना चाहिए जो उनके निर्देशों को बिना किसी परिवर्तन के प्रसारित करे। इस प्रकार केवल भाग्यवान् व्यक्ति ही गुरु के सम्पर्क में आते हैं। जैसाकि वैदिक शास्त्रों से पुष्टि होती है—*तद्विज्ञानार्थं स गुरुम् एवाभिगच्छेत्*—आध्यात्मिक जगत के व्यापारों को समझने के लिए गुरु की खोज करनी होती है। श्रीमद्भागवत में भी इसकी पुष्टि की गई है—*तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्*—आध्यात्मिक जगत में कार्यों को जानने के इच्छुक व्यक्ति को गुरु की खोज अवश्य करनी चाहिए—ऐसा गुरु जो श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि हो। अतः सभी दृष्टियों से गुरु शब्द का अर्थ श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है, अन्य कोई नहीं।

पद्मपुराण में कहा गया है—*अवैष्णवो गुरुर्न स्यात्*—जो वैष्णव नहीं हैं अर्थात् जो श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि नहीं है, वह गुरु नहीं हो सकता। यहाँ तक कि योग्य ब्राह्मणों के छः शुभ लक्षण बताये गये हैं—वे अत्यन्त विद्वान (पठन) तथा अत्यन्त योग्य शिक्षक (पाठन) होते हैं, वे ईश्वर या देवताओं की पूजा (यजन) में दक्ष होते हैं, वे दूसरों को पूजाविधि सिखाते हैं (याजन), वे दूसरों से भिक्षा ग्रहण करने के सुपात्र होते हैं (प्रतिग्रह) और वे दान द्वारा धन का वितरण करते हैं (दान)। इन समस्त योग्यताओं के होने पर भी यदि कोई ब्राह्मण श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि नहीं है, तो वह गुरु नहीं बन सकता (*गुरुर्न स्यात्*)। किन्तु *वैष्णवः श्वपचो गुरुः*—श्वपच अर्थात् कुकर-भक्षी परिवार का होकर भी भगवान् विष्णु का प्रामाणिक प्रतिनिधि वैष्णव गुरु बन सकता है। स्वर्गलोक की तीन श्रेणियों में से *भौम स्वर्ग* को कभी-कभी भारतवर्ष के एक भूभाग के रूप में स्वीकार किया जाता है जो कश्मीर के नाम से विख्यात है। इस भूभाग में निश्चय ही इन्द्रियसुख की अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं, किन्तु विशुद्ध इन्द्रियातीत जनों को इससे कोई सरोकार नहीं होता। रूप गोस्वामी ने विशुद्ध इन्द्रियातीत जनों के कार्य का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

*अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।*

*आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥*

“मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् की दिव्य सेवा बिना किसी लाभ की आकांक्षा किये या सकाम कर्मों के द्वारा अथवा मीमांसा द्वारा करे। यही विशुद्ध सेवा कहलाती है।” जो श्रीकृष्ण को रिझाने के लिए उनकी सेवा में पूर्णतः लगे रहते हैं, वे स्वर्ग की तीन प्रकार की श्रेणियों *दिव्य स्वर्ग*, *भौम स्वर्ग* तथा *बिल स्वर्ग* में से किसी में भी रुचि नहीं रखते।

एषु पुरुषाणामयुतपुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुतप्राणानां

वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः  
कालो वर्तते ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

एषु—इन आठ वर्षों में; पुरुषाणाम्—समस्त पुरुषों में; अयुत—दस हजार; पुरुष—व्यक्ति, पुरुष; आयुः-वर्षाणाम्—वे जिनकी आयु; देव-कल्पानाम्—जो देवताओं के सृष्ट हैं; नाग-अयुत-प्राणानाम्—दस हजार हाथियों के बल वाले; वज्र-संहनन—वज्र के समान ठोस शरीर के द्वारा; बल—शारीरिक शक्ति; वयः—यौवन से; मोद—प्रचुर इन्द्रियभोग द्वारा; प्रमुदित—उत्तेजित होकर; महा-सौरत—अत्यधिक विषयभोग सम्बन्धी; मिथुन—पुरुष-स्त्री समागम, प्रसंग; व्यवाय-अपवर्ग—रतिजन्य सुख की अवधि के अन्त में; वर्ष—अन्तिम वर्ष में; धृत-एक-गर्भ—एक गर्भ धारण करने वाली; कलत्राणाम्—

पत्नियों के; तत्र—वहाँ; तु—लेकिन; त्रेता-युग-समः—त्रेता युग ( जिसमें कोई ताप नहीं रहता ) के ही समान; कालः—समय; वर्तते—रहता है।

गणना के अनुसार इन आठ भूभागों में मानव प्राणी पृथ्वी लोक की गणना के अनुसार दस हजार वर्षों तक जीवित रहते हैं। इनके सभी निवासी प्रायः देवताओं के तुल्य हैं। उनमें दस हजार हाथियों का बल होता है। दरअसल, उनके शरीर वज्र की भाँति कठोर होते हैं। उनके जीवन का यौवनकाल अत्यन्त आनन्ददायक होता है और स्त्री तथा पुरुष दीर्घकाल तक आनन्द-पूर्वक यौन-समागम करते हैं। वर्षों तक इन्द्रियसुख भोगने के पश्चात् जब जीवन का एक वर्ष शेष रह जाता है, तो स्त्री गर्भवती होती है। इस प्रकार इन स्वर्गलोकों के वासी वैसा ही आनन्द उठाते हैं जैसा कि त्रेता युग के मानव प्राणी।

तात्पर्य : युग चार होते हैं—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग। सत्ययुग में सभी मनुष्य अत्यन्त पवित्र होते थे। सारे व्यक्ति आत्मज्ञान तथा भगवत्-साक्षात्कार के लिए योगाभ्यास करते थे। समाधि में लीन रहने के कारण किसी की भी रुचि भौतिक इन्द्रियसुख में नहीं रहती थी। त्रेतायुग में प्राणी किसी प्रकार का कष्ट सहे बिना इन्द्रियसुख भोगते थे। द्वापरयुग में भौतिक तापों का प्रारम्भ हुआ, किन्तु वे अधिक कष्टप्रद न थे। वास्तव में कलियुग के आते ही कठिन भौतिक तापों का आरम्भ हुआ।

इस श्लोक में जो दूसरी बात कही गई है, वह यह है कि इन आठों दिव्य वर्षों में स्त्री तथा पुरुष द्वारा इन्द्रियसुख भोगते रहने पर भी गर्भाधान नहीं होता है। गर्भाधान तो निम्न योनियों में होता है। उदाहरणार्थ, कुतिया तथा सुअरी वर्ष में दो बार गर्भ धारण करती हैं और प्रत्येक बार कम से कम आधा दर्जन बच्चे उत्पन्न होते हैं। सर्प जैसी निम्नतर योनियों में भी एक बार में सैकड़ों बच्चे पैदा होते हैं। इस श्लोक से यह सूचित होता है कि हमारे उच्च योनियों में जीवनपर्यन्त केवल एक बार गर्भाधान होता है। पुरुष के संग संभोग करने पर भी स्त्री के गर्भाधान नहीं होता। दिव्यलोक के प्राणी कामेच्छा के प्रति अधिक आकर्षित नहीं होते जिसका कारण भक्ति की ओर उनकी उच्च मनोवृत्ति है। एक तरह से देखा जाये तो दिव्य लोक में कामेच्छा होती ही नहीं और यदि कभी हुई भी तो गर्भाधान नहीं होता। किन्तु पृथ्वी लोक में गर्भाधान होता है, भले ही लोग सन्तानों से कितना ही क्यों न बचना चाहें। इस पापी कलियुग में तो मनुष्य गर्भ में ही शिशु-हत्या करने लगे हैं। यह अत्यन्त नीच कर्म है, इससे कर्ता के भौतिक कष्टों में वृद्धि ही होती है।

यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः

सर्वर्तुकुसुमस्तबकफलकिसलयश्रियानम्यमानविटपलताविटपिभिरुपशुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनव  
र्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु

विकचविविधनवनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृति  
भरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां

कामकलिलविलासहासलीलावलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥ १३ ॥

#### शब्दार्थ

यत्र ह—उन आठों भूखण्डों में; देव-पतयः—देवताओं के स्वामी, यथा इन्द्र; स्वैः स्वैः—अपने अपने; गण-नायकैः—सेवकों के नेताओं द्वारा; विहित—अलंकृत; महा-अर्हणाः—मूल्यवान भेंटें यथा चन्दन तथा मालाएँ; सर्व-ऋतु—समस्त ऋतुओं में; कुसुम-स्तबक—पुष्प गुच्छ, फूलों का गुच्छा; फल—फल का; किसलय-श्रिया—कोपलों की श्री ( वैभव ); आनम्यमान—नमित; विटप—जिसकी शाखाएँ; लता—तथा बेलें; विटपिभिः—अनेक वृक्षों से; उपशुम्भमान—पूर्णतया अलंकृत; रुचिर—सुन्दर; कानन—उद्यान; आश्रम-आयतन—और अनेक आश्रमों; वर्ष-गिरि-द्रोणीषु—भूखण्ड की सीमा के सूचक पर्वतों के बीच की घाटियाँ; तथा—और; च—भी; अमल-जल-आशयेषु—विमल जल वाले सरोवरों में; विकच—सद्यः विकसित; विविध—अनेक प्रकार के; नव-वनरुह-आमोद—कमल पुष्पों की सुरभि से; मुदित—प्रसन्न; राज-हंस—बड़े-बड़े हंस; जल-कुक्कुट—जल मुर्गी; कारण्डव—कारण्डव नामक जल पक्षी; सारस—सारस पक्षी; चक्रवाक-आदिभिः—चक्रवाक तथा अन्य पक्षी; मधुकर-निकर-आकृतिभिः—भौरों के समूह द्वारा; उपकूजितेषु—प्रतिध्वनित; जल-क्रीडा-आदिभिः—जलक्रीडा आदि के द्वारा; विचित्र—विविध; विनोदैः—आमोद-प्रमोद से; सु-ललित—आकर्षक; सुर-सुन्दरीणाम्—देवताओं की पत्नियों की; काम—भोगेच्छा; कलिल—उत्पन्न; विलास—आमोद-प्रमोद; हास—मुस्कान; लीला-अवलोक—बाँकी चितवन द्वारा; आकृष्ट-मनः—जिनके मन आकृष्ट होते रहते हैं; दृष्टयः—तथा जिनकी दृष्टि आकृष्ट हो जाती है; स्वैरम्—स्वेच्छापूर्वक; विहरन्ति—विहार करते हैं।

इन भूखण्डों में से प्रत्येक में ऋतुओं के अनुसार फूलों तथा फलों से पूरित अनेक उद्यान एवं मनोहर ढंग से अलंकृत आश्रम हैं। इन भूखण्डों की सीमा बताने वाले विशाल पर्वतों के बीच निर्मल जल से पूरित विशाल सरोवर हैं जिनमें कमल के नए पुष्प खिले हुए हैं। इन कमल पुष्पों की सुगन्धि से हंस, बत्तख, जलमुर्गियाँ तथा सारस जैसे जल-पक्षी अत्यन्त उत्तेजित होते हैं और भौरों के मोहक गुंजन से वायु पूरित रहती है। इन भूखण्डों के निवासी देवताओं के प्रमुख नायक हैं। अपने सेवकों से सेवित ये लोग सरोवरों के तटवर्ती उद्यानों में जीवन का आनन्द उठाते हैं। ऐसे मोहक वातावरण में देवताओं की पत्नियाँ अपने पतियों से हास-परिहास करती हैं और उन्हें कामेच्छा से पूर्ण बाँकी चितवन से देखती हैं। सभी देवताओं एवं उनकी पत्नियों पर उनके सेवक सदैव चन्दन तथा पुष्पमालाएँ चढ़ाते रहते हैं। इस प्रकार आठों स्वर्गिक वर्षों के रहने वाले लोग स्त्रियों की क्रियाओं से आकृष्ट होकर जीवन का आनन्द भोगते रहते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर निम्नस्थ स्वर्गलोकों का वर्णन हुआ है। इन लोकों के वासी मोहक वातावरण में जीवन-उपभोग करते हैं जहाँ स्वच्छ सरोवर नए उगे कमल पुष्पों से और उद्यान नाना प्रकार के

फलफूलों, पक्षियों तथा गुंजार करते भौरों से भरे रहते हैं। ऐसे वातावरण में वे अपनी अत्यन्त सुन्दर एवं कामासक्त पत्नियों के साथ आनन्दमग्न रहते हैं। तो भी वे सब भगवान् के भक्त होते हैं। जैसाकि अगले श्लोकों में बताया गया है। इस पृथ्वी के निवासी भी ऐसे स्वर्गिक सुखोपभोग की आकांक्षा करते हैं, किन्तु उन्हें जैसे तैसे कामसुख तथा नशा जैसे कृत्रिम आनन्दों की प्राप्ति हो जाती है, तो वे भगवान् की सेवा सर्वथा भूल जाते हैं। किन्तु स्वर्ग लोकों में उच्चस्तर के इन्द्रियसुख का भोग करते हुए भी वहाँ के वासी यह कभी नहीं भूलते कि वे परम-पुरुष के शाश्वत सेवक हैं।

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाद्यापि सन्निधीयते. ॥  
१४॥

#### शब्दार्थ

नवसु—नवों; अपि—निश्चय ही; वर्षेषु—वर्षों में; भगवान्—श्रीभगवान्; नारायणः—विष्णु; महा-पुरुषः—परम पुरुष; पुरुषाणाम्—विभिन्न भक्तों में; तत्-अनुग्रहाय—कृपा प्रदर्शित करने के लिए; आत्म-तत्त्व-व्यूहेन—अपने चतुर्गुण रूपों वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध में विस्तार करके; आत्मना—स्वयं; अद्य अपि—आज तक; सन्निधीयते—उनकी सेवा स्वीकार करने के लिए भक्तों के निकट हैं।

इन सभी नौ वर्षों में अपने भक्तों पर कृपा करने के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, जिन्हें नारायण कहा जाता है, अपने चतुर्व्यूह रूपों—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—में विस्तार करते हैं। इस प्रकार अपने भक्तों की सेवा स्वीकार करने के लिए वे उनके निकट रहते हैं।

**तात्पर्य :** इस प्रसंग में विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने बताया है कि सभी देवता परमेश्वर की उनके विविध श्रीविग्रह (अर्चा-विग्रह) रूपों में इसलिए पूजा करते हैं, क्योंकि दिव्य लोक के अतिरिक्त अन्यत्र साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की प्रत्यक्ष पूजा नहीं की जा सकती। भौतिक जगत में भगवान् की पूजा मन्दिर में अर्चा-विग्रह अथवा श्रीविग्रह के रूप में की जाती है। अर्चा-विग्रह तथा मूल पुरुष में कोई अन्तर नहीं होता, अतः जो लोग इस लोक में ऐश्वर्यपूर्ण मन्दिरों में श्रीविग्रह की पूजा करने में रत रहते हैं उन्हें निश्चित रूप से श्रीभगवान् के प्रत्यक्ष सम्पर्क में मानना चाहिए। शास्त्रों में जैसाकि कहा गया है—*अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिः*—“न तो मन्दिर स्थित श्रीविग्रह को पत्थर या धातु मानना चाहिए और न ही गुरु को सामान्य व्यक्ति।” प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह इस शास्त्र के इस आदेश का पालन करके श्रीभगवान् के श्रीविग्रह की पूजा निरपराध भाव से करे। गुरु ईश्वर का साक्षात्

प्रतिनिधि होता है—कोई उसे सामान्य व्यक्ति न समझे। कोई भी व्यक्ति श्रीविग्रह तथा गुरु के प्रति अपराध से विरत रहकर अपने आध्यात्मिक जीवन को उन्नत कर सकता है अथवा कृष्णभावनाभावित हो सकता है।

इस सम्बन्ध में लघुभागवतामृत में प्राप्त निम्नलिखित उद्धरण दृष्टव्य है—

पादो तु परमव्योम्नः पूर्वाद्ये दिक्चतुष्टये ।

वासुदेवादयो व्यूहश्चत्वारः कथिताः क्रमात् ॥

तथा पादविभूतौ च निवसन्ति क्रमादि मे ।

जलावृतिस्थवैकुण्ठस्थित वेदवतीपुरे ॥

सत्योर्ध्वे वैष्णवे लोके नित्याख्ये द्वारकापुरे ।

शुद्धोदादुत्तरे श्वेतद्वीपे चैरावतीपुरे ॥

क्षीराम्बुधिस्थितान्ते क्रोडपर्यकधामनि

सात्वतीये क्वचित् तन्त्रे नव व्यूहाः प्रकीर्तिताः ।

चत्वारो वासुदेवाद्या नारायणनृसिंहकौ ॥

हयग्रीवो महाक्रोडो ब्रह्मा चेति नवोदिताः ।

तत्र ब्रह्मा तु विज्ञेयः पूर्वोक्तविधया हरिः ॥

“पद्मपुराण में यह कहा गया है कि आध्यात्मिक लोक में भगवान् स्वतः समस्त दिशाओं में विस्तार करते हैं और वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध रूप में पूजित हैं। वे ही भगवान् इस भौतिक जगत में जो उनकी सृष्टि का चतुर्थांश हैं श्रीविग्रह रूप में प्रदर्शित किये जाते हैं। इस भौतिक जगत की चारों दिशाओं में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भी उपस्थित रहते हैं। इस भौतिक जगत में जल के नीचे वैकुण्ठ लोक है, जिसमें वेदवती नामक स्थान है जहाँ वासुदेव स्थित है। एक अन्य लोक, जिसे विष्णुलोक कहते हैं, सत्यलोक के ऊपर स्थित है, जहाँ संकर्षण उपस्थित हैं। इसी प्रकार द्वारकापुरी में प्रद्युम्न का आधिपत्य है। श्वेतद्वीप में क्षीर सागर है। इसी सागर के मध्य में ऐरावती पुर नामक स्थान है जहाँ अनन्तशायी अनिरुद्ध हैं। कतिपय सात्वत तंत्रों में नौ वर्षों एवं उनमें पूजित प्रधान श्रीविग्रहों का वर्णन मिलता है। वे हैं—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, नृसिंह,



हयग्रीव, महावराह तथा ब्रह्मा ।” इस प्रसंग में स्वयं ब्रह्मा ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं । जब कोई जीव ब्रह्मा बनने के योग्य नहीं पाया जाता है, तो भगवान् स्वयं ब्रह्मा का स्थान ले लेते हैं । तत्र ब्रह्मा तु विज्ञेयः पूर्वोक्तविधया हरिः । यहाँ पर वर्णित ब्रह्मा साक्षात् हरि हैं ।

इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान् ह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्दक्ष्यामि ॥ १५ ॥

#### शब्दार्थ

इलावृते—इलावृत-वर्ष में; तु—लेकिन; भगवान्—सर्वशक्तिमान्; भवः—भगवान् शिव; एक—एकमात्र; एव—निश्चय ही; पुमान्—पुरुष; न—नहीं; हि—अवश्य ही; अन्यः—दूसरा कोई; तत्र—वहाँ; अपरः—के अतिरिक्त; निर्विशति—प्रवेश करता है; भवान्याः शाप-निमित्त-ज्ञः—शिव की पत्नी भवानी के शाप का कारण जानने वाला; यत्-प्रवेक्ष्यतः—बलपूर्वक उस प्रदेश में प्रवेश करने वाले का; स्त्री-भावः—स्त्री में परिवर्तन; तत्—वह; पश्चात्—बाद में; दक्ष्यामि—मैं व्याख्या करूँगा ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—इलावृत वर्ष नामक भूखण्ड में भगवान् शिव ही एकमात्र पुरुष हैं जो देवताओं में सर्वाधिक शक्तिमान है । भगवान् शिव की पत्नी देवी दुर्गा नहीं चाहती कि उस प्रदेश में कोई भी पुरुष प्रवेश करे । यदि कोई मूर्ख पुरुष प्रवेश करने का दुस्साहस करता है, तो वे उसे तत्क्षण स्त्री में परिणत कर देती हैं । इसकी व्याख्या मैं बाद में ( नवम स्कन्ध में ) करूँगा ।

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन्भव उपधावति ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

भवानी-नाथैः—भवानी के संग से; स्त्री-गण—स्त्रियों का; अर्बुद-सहस्रैः—सौ अरब; अवरुध्यमानः—सदैव सेवित होकर; भगवतः चतुः-मूर्तेः—चतुर्गुण रूप में विस्तारित श्रीभगवान्; महा-पुरुषस्य—परम पुरुष का; तुरीयाम्—चतुर्थ विस्तार; तामसीम्—तमोगुण से सम्बद्ध; मूर्तिम्—रूप; प्रकृतिम्—स्रोत स्वरूपा; आत्मनः—स्वयं ( भगवान् शिव ) का; सङ्कर्षण-संज्ञाम्—संकर्षण नाम से विख्यात; आत्म-समाधि-रूपेण—समाधि में स्वयं के ध्यान के द्वारा; सन्निधाप्यै—निकट लाकर; एतत्—यह; अभिगृणन्—स्पष्ट रूप से कीर्तन करके; भवः—भगवान् शिव; उपधावति—पूजा करता है ।

इलावृत्त वर्ष में भगवान् शंकर सदैव दुर्गा की सौ अरब दासियों से घिरे रहते हैं जो उनकी सेवा करती हैं । परमात्मा का चतुर्गुण विस्तार वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा संकर्षण में हुआ है । इनमें चतुर्थ विस्तार संकर्षण है जो निश्चित रूप से दिव्य है, किन्तु भौतिक जगत् में उनका संहार-कार्य तमोगुणमय है, अतः वे तामसी अर्थात् तमोगुणी-ईश्वर कहलाते हैं । भगवान् शिव को ज्ञात है कि संकर्षण उनके अपने अस्तित्व के मूल कारण हैं, अतः वे समाधि में निम्नलिखित

मंत्र का जप करते हुए उनका ध्यान करते हैं।

तात्पर्य : कभी-कभी हम भगवान् शंकर का ध्यानावस्थित चित्र देखते हैं। इस श्लोक में बताया गया है कि शिवजी समाधि में सदा संकर्षण का ध्यान करते रहते हैं। शिव इस जगत के संहारक हैं। ब्रह्मा इस जगत की सृष्टि करते हैं तथा भगवान् विष्णु इसका पालन करते हैं और शिवजी इसका संहार करते हैं। चूँकि संहार तमोगुण है, अतः शिवजी तथा उनके उपास्य संकर्षण को तामसी कहा गया है। शिवजी तमोगुण के अवतार हैं। चूँकि शिवजी तथा संकर्षण दोनों प्रबुद्ध हैं और दिव्य पद पर स्थित हैं, अतः वे भौतिक गुणों—सतो, रजो तथा तमो—से कोई सरोकार नहीं रखते, किन्तु उनके कर्म उन्हें तमोगुणी बनाते हैं, अतः वे कभी-कभी तामसी कहलाते हैं।

श्रीभगवानुवाच

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसङ्ख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् शंकर कहते हैं; ॐ नमो भगवते—भगवान् को मैं आदरपूर्वक प्रणाम करता हूँ; महा-पुरुषाय—आप महापुरुष हैं; सर्व-गुण-सङ्ख्यानाय—समस्त दिव्य गुणों के आगार; अनन्ताय—अपरिमित; अव्यक्ताय—भौतिक जगत में न प्रगट होने वाले; नमः—प्रणाम करता हूँ; इति—इस प्रकार।

परम शक्तिमान भगवान् शिव कहते हैं—हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, मैं संकर्षण के रूप में आपको प्रणाम करता हूँ। आप समस्त दिव्य गुणों के आगार हैं। अनन्त होकर भी आप अभक्तों के लिए अप्रकट रहते हैं।

भजे भजन्यारणपादपङ्कजं

भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।

भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं

भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

भजे—मैं पूजा करता हूँ; भजन्य—हे आराध्य स्वामी; अरण-पाद-पङ्कजम्—जिसके चरणकमल भक्तों के सभी प्रकार के भयों से रक्षा करते हैं; भगस्य—ऐश्वर्य का; कृत्स्नस्य—विभिन्न प्रकार के ( धन, यश, बल, ज्ञान, रूप तथा त्याग ); परम्—श्रेष्ठ; परायणम्—परम शरण; भक्तेषु—भक्तों के लिए; अलम्—अनुमान से परे; भावित-भूत-भावनम्—भक्तों के परितोष के लिए अपने विभिन्न रूपों को प्रकट करने वाला; भव-अपहम्—भक्त के जन्म-मरण चक्र को रोकने वाले; त्वा—आपको; भव-भावम्—भौतिक सृष्टि का मूल; ईश्वरम्—भगवान् को।

हे प्रभो, आप ही एकमात्र आराध्य हैं, क्योंकि आप ही समस्त ऐश्वर्यों के आगार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। आपके चरण-कमल भक्तों के एकमात्र आश्रय हैं। आप भक्तों को अपने

नाना रूपों द्वारा सन्तुष्ट करने वाले हैं। हे प्रभो, आप अपने भक्तों को भौतिक संसार के चंगुल से छुड़ाने वाले हैं। आपकी इच्छा से ही अभक्त लोग इस भौतिक संसार में उलझे रहते हैं। कृपया मुझे अपने नित्य दास के रूप में स्वीकार करें।

न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभि-

निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ।

ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां

कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; यस्य—जिसकी; माया—माया शक्ति, माया; गुण—गुणों में; चित्त—हृदय की; वृत्तिभिः—क्रियाओं के द्वारा (चिन्तन, अनुभव तथा इच्छा); निरीक्षतः—निरीक्षण करने वाले का; हि—निश्चय ही; अणु—कुछ-कुछ; अपि—भी; दृष्टिः—दृष्टि; अज्यते—प्रभावित होती है; ईशे—नियमन हेतु; यथा—जिस प्रकार; नः—हम लोगों का; अजित—जो जीता न जा सके; मन्यु—क्रोध के; रंहसाम्—वेग को; कः—कौन; तम्—उस (ईश्वर) को; न—नहीं; मन्येत—पूजा करेगा; जिगीषुः—जीतने की कामना करने वाला; आत्मनः—इन्द्रियों को।

हम अपने क्रोध के वेग को रोक नहीं पाते, अतः जब हम भौतिक वस्तुओं को देखते हैं तो

उनसे आकर्षित या विकर्षित हुए बिना नहीं रह पाते। किन्तु परमेश्वर इस प्रकार कभी भी

प्रभावित नहीं होते। यद्यपि इस भौतिक जगत की सृष्टि, पालन तथा संहार के हेतु इस पर दृष्टिपात

करते हैं, किन्तु इससे रंचमात्र भी प्रभावित नहीं होते। अतः वह जो अपनी इन्द्रियों के वेग पर

विजय प्राप्त करना चाहता है, उसे श्रीभगवान् के चरमकमलों की शरण लेनी चाहिए। तभी वह

विजयी होगा।

तात्पर्य : भगवान् सदा अचिन्त्य शक्तियों से युक्त रहते हैं। यद्यपि उनके द्वारा भौतिक शक्ति (माया) पर दृष्टिपात करते ही सृष्टि हो जाती है, किन्तु भौतिक प्रकृति के गुणों से वे अप्रभावित रहते हैं। जब भगवान् इस भौतिक जगत में प्रकट होते हैं, तो उनकी दिव्य स्थिति के कारण भौतिक प्रकृति के गुण उनमें व्याप्त नहीं होते। इसीलिए भगवान् दिव्य कहलाते हैं। फलतः जो भी भौतिक प्रकृति के गुणों के प्रभाव से बचना चाहता है उसे उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिए।

असदृशो यः प्रतिभाति मायया

क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ।

न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया

यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

असत्-दृशः—कुत्सित दृष्टि वाले व्यक्ति के हेतु; यः—जो; प्रतिभाति—प्रतीत होता है; मायया—माया के वश में; क्षीबः—कुब्ध; इव—सदृश; मधु—शहद; आसव—तथा सुरा द्वारा; ताम्र-लोचनः—ताँबे के समान रक्तनेत्र वाला; न—नहीं; नाग-वध्वः—नागों की स्त्रियाँ; अर्हणे—पूजन; ईशिरे—करने में अशक्त; ह्रिया—लज्जावश; यत्-पादयोः—जिसके चरणकमल के; स्पर्शन—स्पर्श से; धर्षित—उत्तेजित; इन्द्रियाः—जिसकी इन्द्रियाँ।

कुत्सित दृष्टि वाले व्यक्तियों के लिए भगवान् के नेत्र मदिरा पीये हुए उन्मत्त पुरुष जैसे हैं। ऐसे अविवेकी पुरुष भगवान् पर रुष्ट होते हैं और अपने रोषवश उन्हें श्रीभगवान् अत्यन्त रुष्ट एवं भयावह लगते हैं। किन्तु यह माया है। जब भगवान् के चरणकमलों के स्पर्श से नाग-वधुएँ उत्तेजित हुईं तो वे लज्जावश उनकी और अधिक आराधना नहीं कर पाईं फिर भी भगवान् उनके स्पर्श से उत्तेजित नहीं हुए, क्योंकि समस्त परिस्थितियों में वे धीर बने रहते हैं। अतः ऐसा कौन होगा जो भगवान् की आराधना करना नहीं चाहेगा?

तात्पर्य : उत्तेजना का कारण रहते हुए भी जो उत्तेजित नहीं होता वह धीर कहलाता है। भगवान् सदैव दिव्य स्थिति में रहने के कारण कभी भी किसी प्रकार उत्तेजित नहीं होते। अतः यदि कोई धीर बनना चाहता है, तो उसे भगवान् के चरणकमलों की शरण में जाना चाहिए। भगवद्गीता (२.१३) में श्रीकृष्ण का कथन है, धीरस्तत्र न मुह्यति—ऐसा पुरुष जो सभी परिस्थितियों में धीर बना रहता है कभी किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होता। प्रह्लाद महाराज धीर के ज्वलन्त उदाहरण हैं। जब नृसिंहदेव हिरण्यकशिपु का वध करने के लिए अपने विकराल रूप में प्रकट हुए तो प्रह्लाद तनिक भी उत्तेजित नहीं हुए। वे शान्त और स्थिर बने रहे, जबकि अन्य सभी, यहाँ तक कि ब्रह्माजी भी, भगवान् के रूप से भयभीत हो गए थे।

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं

त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ।

न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं

भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको; आहुः—उन्होंने कहा; अस्य—इस भौतिक जगत की; स्थिति—पोषण; जन्म—सृष्टि; संयमम्—संहार; त्रिभिः—इन तीनों; विहीनम्—से रहित; यम्—जो; अनन्तम्—अनन्त, असीम; ऋषयः—समस्त महान् ऋषि; न—नहीं; वेद—अनुभव करते हैं; सिद्ध-अर्थम्—सरसों का बीज; इव—के समान; क्वचित्—जहाँ; स्थितम्—स्थित; भू-मण्डलम्—यह ब्रह्माण्ड; मूर्ध-सहस्र-धामसु—भगवान् के सैकड़ों हजारों फणों पर।

शिवजी कहते हैं—सभी महान् ऋषि भगवान् को सृजक, पालक और संहारक के रूप में स्वीकार करते हैं, यद्यपि वास्तव में उनका इन कार्यों से कोई सरोकार नहीं है। इसीलिए श्रीभगवान् को अनन्त कहा गया है। यद्यपि शेष अवतार के रूप में वे अपने फणों पर समस्त ब्रह्माण्डों को धारण करते हैं, किन्तु प्रत्येक ब्रह्माण्ड उन्हें सरसों के बीज से अधिक भारी नहीं लगता। अतः सिद्धि का इच्छुक ऐसा कौन पुरुष होगा जो ईश्वर की आराधना नहीं करेगा ?

तात्पर्य : श्रीभगवान् के शेष या अनन्त अवतार में असीम शक्ति, यश, वैभव, ज्ञान, सौन्दर्य तथा त्याग भरा है। इस श्लोक में बताया गया है कि अनन्त अवतार में इतनी महान् शक्ति है कि उनके फणों पर असंख्य ब्रह्माण्ड टिके हैं। उनका शरीर हजार फणों वाले सर्प की भाँति है और अपार शक्ति होने के कारण फणों पर टिके सभी ब्रह्माण्ड सरसों के बीज से अधिक भारी नहीं प्रतीत होते। हम सहज कल्पना कर सकते हैं कि सर्प फण पर स्थित सरसों का बीज कितना नगण्य होता है। इस प्रसंग में पाठकों को चाहिए कि वे *चैतन्यचरितामृत आदिलीला* अध्याय ५, श्लोक ११७-१२५ पढ़ें। उसमें यह कहा गया है कि अनन्त शेषनाग के रूप में श्रीविष्णु का अवतार समस्त ब्रह्माण्डों को अपने फणों पर धारण किये है। हमारी गणना के अनुसार भले ही कोई ब्रह्माण्ड कितना ही भारी क्यों न हो, किन्तु अनन्त होने के कारण श्रीभगवान् को वह सरसों के बीज से अधिक भारी नहीं लगता।

यस्याद्य आसीद्गुणविग्रहो महान्  
 विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ।  
 यत्सम्भवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा  
 वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥ २२ ॥  
 एते वयं यस्य वशे महात्मनः  
 स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः ।  
 महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः  
 सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिससे; आद्यः—आरम्भ; आसीत्—था; गुण-विग्रहः—गुणों का अवतार; महान्—सम्पूर्ण माया; विज्ञान—सम्पूर्ण ज्ञान का; धिष्ण्यः—आगार; भगवान्—सर्व-शक्तिमान; अजः—भगवान् ब्रह्मा; किल—निश्चय ही; यत्—जिससे; सम्भवः—उत्पन्न, सम्भूत; अहम्—मैं; त्रि-वृता—तीन गुणों के अनुसार तीन प्रकार का; स्व-तेजसा—अपनी शक्ति से; वैकारिकम्—सभी देवता; तामसम्—भौतिक तत्त्व; ऐन्द्रियम्—इन्द्रियाँ; सृजे—उत्पन्न करता हूँ; एते—इन सबों को; वयम्—हम; यस्य—जिसके; वशे—वश में; महा-आत्मनः—महान् पुरुष; स्थिताः—स्थित; शकुन्ताः—गृद्ध; इव—सदृश; सूत्र-यन्त्रिताः—सूत्र ( डोरी ) के

द्वारा बद्ध; महान्—महत्त्व; अहम्—मैं; वैकृत—देवतागण; तामस—पाँच तत्त्व; इन्द्रियाः—इन्द्रियाँ; सृजामः—हम सृष्टि करते हैं; सर्वे—हम सभी; यत्—जिसकी; अनुग्रहात्—कृपा से; इदम्—यह भौतिक जगत।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से ही ब्रह्माजी प्रकट होते हैं, जिनका शरीर महत् तत्त्व से निर्मित है और वह भौतिक प्रकृति के रजोगुण द्वारा प्रभावित बुद्धि का आगार है। ब्रह्माजी से मैं स्वयं मिथ्या अहंकार रूप में, जिसे रुद्र कहते हैं, उत्पन्न होता हूँ। मैं अपनी शक्ति से अन्य समस्त देवताओं, पंच तत्त्वों तथा इन्द्रियों को जन्म देता हूँ। अतः मैं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आराधना करता हूँ। वे हम सबों से श्रेष्ठ हैं और सभी देवता, महत् तत्त्व तथा इन्द्रियाँ, यहाँ तक कि ब्रह्माजी और स्वयं मैं उनके वश में वैसे ही हैं जिस प्रकार कि डोरी से बँधे पक्षी। केवल उन्हीं के अनुग्रह से हम इस जगत का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं। अतः मैं परमब्रह्म को सादर प्रणाम करता हूँ।

तात्पर्य : इस श्लोक में सृष्टि का सारांश दिया गया है। संकर्षण से महाविष्णु और महाविष्णु से गर्भोदकशायी विष्णु का विस्तार होता है। ब्रह्माजी का जन्म इन्हीं विष्णु से हुआ और ब्रह्माजी से शिवजी का जन्म हुआ जिनसे अन्य समस्त देवताओं का क्रम से विकास हुआ। ब्रह्माजी, शिवजी तथा श्रीविष्णु भिन्न-भिन्न गुणों से युक्त अवतार हैं। भगवान् विष्णु समस्त भौतिक गुणों से परे हैं, किन्तु वे सत्त्व गुण को वश में रखते हैं जिससे ब्रह्माण्ड का पोषण होता है। ब्रह्माजी की उत्पत्ति महत्त्व से हुई। ब्रह्माजी ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सृजन करने वाले हैं, श्रीविष्णु इसका पालन करने वाले और शिवजी इसका संहार करने वाले हैं। श्रीभगवान् समस्त प्रमुख देवताओं को—विशेषतः ब्रह्माजी तथा शिवजी को वैसे ही अपने वश में रखते हैं जिस प्रकार डोरी से बँधे कोई पक्षी का मालिक। कभी-कभी गृद्ध भी इसी तरह वशीभूत किये जाते हैं।

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं

मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ।

न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा

तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिससे; निर्मिताम्—निर्मित; कर्ह्यपि—किसी भी समय; कर्म-पर्वणीम्—कर्मों की गाँठ को बाँधने वाली; मायाम्—माया को; जनः—व्यक्ति; अयम्—यह; गुण-सर्ग-मोहितः—तीन प्रकार के गुणों से मोहित; न—नहीं; वेद—जानता है;

निस्तारण-योगम्—सांसारिक बन्धन से छूटने की विधि; अञ्जसा—शीघ्र; तस्मै—उसको; नमः—नमस्कार है; ते—तुम्हें; विलय-उदय-आत्मने—जिसमें प्रत्येक वस्तु विलय होकर पुनः उसी से उत्पन्न होती है।

श्रीभगवान् की माया हम समस्त बद्ध जीवात्माओं को इस भौतिक जगत से बाँधती है, अतः उनकी कृपा के बिना हम जैसे तुच्छ प्राणी माया से छूटने की विधि नहीं समझ पाते। मैं उन श्रीभगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ, जो इस जगत की उत्पत्ति और लय के कारणस्वरूप हैं।

तात्पर्य : भगवद्गीता (७.१४) में श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

“मेरी यह दैवीशक्ति अर्थात् त्रिगुणमयी माया बड़ी दुस्तर है, परन्तु जो मेरे शरणागत हो जाते हैं, वे सुगमतापूर्वक इससे तर जाते हैं।” भगवान् के मायावश होकर कार्य करनेवाली समस्त बद्ध जीवात्माएँ देह को ही स्वयं मानकर निरन्तर ब्रह्माण्ड में घूमती रहती हैं और विभिन्न योनियों में जन्म धारण करके नाना प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करती रहती हैं। कभी-कभी वे इन समस्याओं से निराश होकर ऐसी विधि निकाल लेती हैं, जिससे वे इस बन्धन से निकल सकें। दुर्भाग्यवश ऐसे तथाकथित शोध करनेवाले श्रीभगवान् तथा उनकी माया से अपरिचित रहकर अंधकार में भटकते फिरते हैं और कभी बाहर निकल नहीं पाते। तथाकथित विज्ञानी और उन्नतिशील शोधकर्ता जीवन के कारण का पता लगाने का प्रयास कर रहे हैं। वे इसकी ओर ध्यान नहीं देते कि जीवन का सृजन पहले से हो रहा है। यदि वे जीवन का रासायनिक संघटन ज्ञात कर लेते हैं तो इसमें उनका क्या श्रेय है? उनके सभी रासायनिक पदार्थ आखिर पाँच तत्त्वों—क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर—के विभिन्न रूपान्तर ही तो हैं। जैसा भगवद्गीता (२.२०) में कहा गया है जीवात्मा का कभी सृजन नहीं होता ( न जायते म्रियते वा कदाचिन् )। वैसे पाँच स्थूल भौतिक तत्त्व, तीन सूक्ष्म भौतिक तत्त्व (मन, बुद्धि और अहं) तथा शाश्वत जीवात्माएँ हैं। जीवात्मा जब किसी विशेष प्रकार की देह की कामना करता है, तो श्रीभगवान् की आज्ञा से भौतिक प्रकृति से उस देह की उत्पत्ति होती है जो परम-ईश्वर द्वारा संचालित यंत्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। भगवान् जीवात्मा को एक विशेष प्रकार की यांत्रिक देह प्रदान करता है और जीवात्मा को सकाम कर्मों के नियमानुसार इस देह के साथ कार्य करना होता है। कर्मों का विवरण इस श्लोक में दिया गया है—*कर्म-पर्वणी मायाम्*। जीवात्मा यंत्रारूढ़ है और श्रीभगवान् की

आज्ञानुसार वह उस यंत्र का संचालन करता है। आत्मा के एक देह से दूसरे में देहान्तरण का यही रहस्य है। इस प्रकार जीवात्मा इस भौतिक जगत में सकाम कर्मों में फँस जाता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१५.७) में पुष्टि की गई है—*मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति*—“जीवात्मा मन समेत छहों इन्द्रियों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है।”

उत्पत्ति तथा लय की समस्त क्रियाओं में जीवात्मा अपने सकाम कर्मों में फँसा रहता है जो माया के द्वारा सम्पादित होते हैं। वह भगवान् द्वारा संचालित कम्प्यूटर के समान है। तथाकथित विज्ञानियों का कथन है कि प्रकृति मुक्त भाव से कार्य करती है, किन्तु वे प्रकृति की व्याख्या नहीं कर पाते। प्रकृति भगवान् द्वारा संचालित यंत्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। संचालनकर्ता को जान लेने पर मनुष्य-जीवन की समस्याएँ हल हो जाती हैं, जैसा श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.१९) में कहा है—

*बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।*

*वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥*

“बहुत से जन्म-जन्मांतरों के अन्त में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष मुझे सब कारणों का परम कारण और सर्वव्यापक जानकर मेरी शरण में आता है। ऐसा महात्मा बड़ा दुर्लभ है।” अतः बुद्धिमान व्यक्ति भगवान् की शरण में जाता है और इस प्रकार माया के फंदे से निकल जाता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कंध के अन्तर्गत “गंगा-अवतरण” नामक सत्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।